संपादकीय जागरण

बुधवार, 18 अप्रैल, 2018 : वैशाख शुक्ल 3 वि. 2075

प्रेम जीवन की गाड़ी का ईंधन है

नकदी का संकट

देश के कई हिस्सों में नकदी संकट खड़ा हो जाने के बाद बैंकों, रिजर्व बैंक और सरकार की ओर से जो सफाई दी गई उसका मूल्य-महत्व तभी है जब इस संकट को जल्द सुलझा लिया जाए। अगर रिजर्व बैंक और सरकार अपने वायदे पर खरी नहीं उतरी तो यह संकट और गहरा सकता है और देश के उन हिस्सों को भी अपनी चपेट में ले सकता है जहां यह अभी उतना गंभीर नहीं जितना बिहार, मध्य प्रदेश, तेलंगाना, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश के साथ देश के कुछ अन्य हिस्सों में दिख रहा है। ऐसा होने की आशंका इसलिए है, क्योंकि जैसे-जैसे यह खबर फैलेगी कि बैंक और एटीएम नकदी की किल्लत से जूझ रहे हैं वैसे-वैसे लोग बिना जरूरत भी नकदी से लैस होने की कोशिश कर सकते हैं। ध्यान रहे कि नकदी संकट को लेकर कुछ विपक्षी दल आग में घी डालने वाला काम कर रहे हैं। इन स्थितियों में केवल यह भरोसा दिलाने से बात नहीं बनेगी कि रिजर्व बैंक के पास पर्याप्त नकदी है और उसकी आपूर्ति की जा रही है। समझना कठिन है कि रिजर्व बैंक समय रहते यह क्यों नहीं भांप सका कि देश के कुछ हिस्सों में नकदी की किल्लत बढ़ रही है? क्या बैंकों ने उसे वक्त पर सूचना नहीं दी या फिर उसने इस सूचना को गंभीरता से नहीं लिया? एक सवाल यह भी है कि क्या रिजर्व बैंक अभी तक नकदी पहुंचाने के अपने सिस्टम को दुरुस्त नहीं कर सका है? यह ठीक नहीं कि नकदी संकट के सिर उठा लेने और इस मसले पर विपक्षी नेताओं की जली-कटी सुनने के बाद सरकार को एक समिति बनाने की सूझी जो रिजर्व बैंक के साथ मिलकर नकदी की उपलब्धता पर नजर रखेगी। क्या इसके पहले सरकार या रिजर्व बैंक के पास ऐसा कोई तंत्र नहीं था जो नकदी के प्रवाह पर निगाह रखता? क्या नोटबंदी के अनुभवों से कोई सबक सीखने से इन्कार किया गया? किसी को इस सवाल का भी जवाब देना चाहिए कि यह जानना कठिन क्यों हो गया कि कहां कितनी नकदी खप रही है? संकट के सिर उठा लेने के बाद उसके समाधान के लिए समिति बनाना तो एक तरह से आग लगने के बाद कुआं खोदने वाला काम है। ऐसे काम तंत्र की ढिलाई के साथ-साथ सजगता के अभाव को ही रेखांकित करते हैं।

यह ठीक नहीं कि सरकार और रिजर्व बैंक यह बताने की स्थिति में नहीं कि करेंसी नोट की मांग अचानक क्यों बढ़ी? कम से कम अब तो इस सवाल का जवाब तलाशा ही जाना चाहिए कि नकदी की मांग में असामान्य उछाल क्यों आया-क्या कृषि उपज की बिक्री के चलते या फिर वित्तीय वर्ष के समापन के चलते अथवा अन्य किसी कारण से? कहीं यह अन्य कारण आगामी चुनाव तो नहीं? जब वित्त मंत्रालय के आर्थिक कार्य विभाग को यह अंदेशा है कि दो हजार रुपये के जितने नोट सिस्टम में डाले जा रहे हैं उससे कम ही वापस आ रहे हैं तब फिर तह तक जाने की जरूरत है। दो हजार रुपये को नोटों की जमाखोरी की आशंका पहले भी जताई जाती रही है, लेकिन लगता है कि उस पर ध्यान नहीं दिया गया।

दिव्यांगों को सहूलियत

बुजुर्गों, दिव्यागों और शारीरिक रूप से कमजोर लोगों के लिए रेलवे ने एक बेहतरीन प्रयास किया है। ट्रेन में चढ़ते-उतरते समय सबसे ज्यादा परेशानी इन्हीं लोगों को होती है। इसलिए अब प्लेटफार्म पर मुड़ने वाले रैंप की व्यवस्था की जा रही है। रैंप को ट्रेन के दरवाजे के पास लगाकर व्हीलचेयर समेत यात्री को उतार लिया या चढ़ा दिया जाएगा। कुछ महीनों पहले त्रिवेंद्रम सेंट्रल स्टेशन से इस व्यवस्था का शुभारंभ किया गया। अब इलाहाबाद जंक्शन पर भी इसका ट्रायल किया गया है। जल्द ही यह सुविधा कानपुर सेंट्रल समेत प्रदेश के अन्य बड़े स्टेशनों पर भी मिलने लगेगी। इस सुविधा को कोई भी जरूरतमंद यात्री बिना शुल्क ले सकता है। रैंप और व्हीलचेयर के साथ कुल तीन रेलकर्मी ट्रेन तक यात्री के साथ जाएंगे और उन्हें चढ़ाकर वापस आएंगे। जैसे-जैसे व्हीलचेयर और रैंप की मांग बढ़ती जाएगी, रेलकर्मियों की संख्या बढ़ा दी जाएगी।

> सच तो यह है कि समाज के कमजोर तबकों और वृद्धजन के लिए कुछ अच्छा तभी किया जा सकता है जब करने वाले की सोच में कल्याण का भाव हो

प्रतिदिन लाखों यात्री ट्रेन सुविधाओं का लाभ उठाते हैं। उनमें बड़ी संख्या बुजुर्गों और शारीरिक रूप से अक्षम लोगों की होती है। उनको ट्रेन में चढ़ाने या उतारने में घर वाले बहुत परेशान होते हैं पर इस नई सुविधा के कारण घरवालों को अब अधिक चिंता नहीं करनी पड़ेगी। रेलवे की यह सुविधा उत्तर प्रदेश के अन्य सरकारी दफ्तरों के लिए भी सबक है। तमाम सरकारी जाग्रति के बावजूद अब भी बहुत से कार्यालयों में रैंप नहीं बनाए जा सके हैं। राजधानी लखनऊ के इंदिरा भवन में एक तो बहुत ऊंची सीढ़ियां हैं और ऊपर से रैंप भी नहीं है। कभी-कभी तो कोई अधिक ही कमजोर वृद्ध सीढ़ियों पर बैठ बैठ कर कोषागार पहुंचते हैं। सच तो यह है कि समाज के कमजोर तबकों और वृद्धजन के लिए कुछ अच्छा तभी किया जा सकता है जब करने वाले की सोच में कल्याण का भाव हो।

कह के रहेंगे

माधव जोशी

जागरण जनमत

कल का परिणाम

क्या राष्ट्रमंडल खेलों में भारत का प्रदर्शन आपकी उम्मीदों पर खरा उतरा है?

आज का सवाल
क्या भगवा आतंकवाद संप्रग सरकार के दिमाग की उपज था?

अपनी राय और अधिक लोगों तक पहुंचाने के लिए अपने मोबाइल के मैसेज बॉक्स में जाकर POLL लिखें, स्पेस देकर Y, N या C लिखकर 57272 पर भेजें
Y –हां, N–नहीं, C–कह नहीं सकते

परिणाम जागरण इंटरनेट संस्करण के पाठकों का मत है।
सभी आंकड़े प्रतिशत में।

आग से खेलते राजनीतिक दल

विजय कुमार चौधरी

किसी क्षणिक राजनीतिक लाभ के लिए समाज को भ्रम के दलदल में धकेलना किसी भी सूरत में वांछनीय नहीं, लेकिन आरक्षण के मसले पर कुछ दल यही काम कर रहे हैं

इस बार बाबा साहब भीमराव आंबेडकर की 127 वीं जयंती कुछ खास रही। शायद ही कोई सक्रिय सामाजिक, राजनीतिक संगठन होगा जिसने 14 अप्रैल को कोई आयोजन न किया हो। राजनीतिक दलों में तो एक होड़ सी दिखी। आंबेडकर को याद करने के बहाने आरक्षण बचाने जैसे छद्म मुद्दे पर एक-दूसरे से आगे निकल जाने की स्पर्धा भी स्पष्ट दिखाई पड़ी। इस पूरे मामले की एक खास पृष्ठभूमि भी है। इसकी बुनियाद 20 मार्च को उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए एक फैसले के साथ पड़ी। इस फैसले में अनुसूचित जाति/जनजाति अत्याचार निवारण कानून से संबंधित एक मामले में अन्य चीजों के अलावा न्यायालय ने दो बातों का निर्देश दिया। पहला, इस कानून के तहत दर्ज मामले में अग्रिम जमानत की अनुमति प्रदान कर दी और दूसरे, ऐसे मामले में बिना पूरी छानबीन किए तुरंत गिरफ्तारी नहीं करने की बात कही। इसका दूसरा कारण संविधान के तहत अनुसूचित जाति/जनजाति के लिए की गई आरक्षण व्यवस्था के संबंध में कुछ संगठनों एवं व्यक्तियों द्वारा विवादास्पद बयान बना। स्वाभाविक तौर पर इन दोनों मामलों के परिणामस्वरूप अनुसूचित जाति/जनजाति वर्ग में संदेह एवं असुरक्षा की एक भावना उत्पन्न हुई। इस भावना का प्रकटीकरण बंद एवं प्रदर्शनों के माध्यम से हुआ। गहराई से देखें तो उच्चतम न्यायालय के उक्त फैसले को अनावश्यक एवं विवाद बढ़ाने वाला ही माना जाएगा।

इस पर पुनर्विचार हेतु केंद्र सरकार एवं एकाध राज्य सरकारों ने पुनः उच्चतम न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है। अनुसूचित जाति एवं जनजाति के ऐतिहासिक एवं सामाजिक रूप से पिछड़ेपन के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक न्याय के सिद्धांत के तहत ही अनुसूचित जाति/जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम, 1989 बनाया गया था। सामाजिक रूप से उनकी संवेदनशील स्थिति को देखते हुए ही उनकी आवाज को ताकत देने और न्याय प्राप्ति हेतु आगे बढ़ने की हिम्मत प्रदान करने के लिए यह विशेष कानून बनाया गया था। समानता के आधार पर बने सामान्य कानूनों की कसौटी पर इसे नहीं परखा जा सकता। इसमें किसी भी तरह का बदलाव करना या अग्रिम जमानत की गुंजाइश करना इसके महत्व एवं प्रभाव को कमतर करने जैसा होगा। जहां तक इस अधिनियम के तहत दर्ज मामले में तुरंत गिरफ्तारी नहीं करने का प्रश्न है, इस निर्देश के पूर्व भी इस देश में सैकड़ों ऐसे मामले दर्ज हुए हैं जिनमें पुलिस द्वारा छानबीन के पश्चात ही कार्रवाई की गई थी। दूसरे शब्दों में यह अधिनियम किसी भी रूप में यह नहीं कहता कि मामला दर्ज होते ही बिना किसी छानबीन के तुरंत ही किसी को गिरफ्तार कर लिया जाए। आखिर ऐसे में न्यायालय के उस निर्देश का औचित्य क्या है? एक तरह से उच्चतम न्यायालय का दखल अनावश्यक ही माना जाएगा, क्योंकि जांच में सच्चाई के आधार पर ही कार्रवाई करने की बात किसी भी अधिनियम में अंतर्निहित होती है। जहां तक इस कानून के दुरुपयोग का प्रश्न है, वह तो जांच एजेंसी के अलावा न्यायपालिका द्वारा भी हो सकता है। इसका प्रमाण उच्चतम न्यायालय से ही संबंधित एक मामले से स्पष्ट है। जस्टिस कर्णन ने भारत के मुख्य न्यायाधीश के साथ चार वरिष्ठतम न्यायाधीशों के विरुद्ध इसी अधिनियम के उल्लंघन का आरोप प्रमाणित कर सजा सुना दी थी। सर्वोच्च न्यायालय ने ही जस्टिस कर्णन के इस आदेश को निष्प्रभावी किया। दुरुपयोग की स्थिति में इसे प्रभावहीन करने की व्यवस्था पहले से ही भारतीय न्याय प्रणाली में मौजूद है। स्पष्ट है कि भ्रम एवं विवाद उत्पन्न करने वाले सुप्रीम कोर्ट के निर्देश का कोई अर्थ नहीं रह जाता।

अवधेश राजपूत

विडंबना यह रही कि कुछ राजनीतिक दलों ने सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले का राजनीतिक लाभ उठाने की कोशिश जानबूझकर की। इसी कोशिश के तहत अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों को प्रदत्त आरक्षण के संबंध में भी भ्रम एवं संशय की स्थिति बनाई गई। नेताओं के कुछ गैरजिम्मेदार बयानों से अनुसूचित जाति एवं जनजाति वर्ग के लोगों को यह अहसास हुआ कि आरक्षण के प्रावधान पर भी प्रहार हो रहा है एवं इसे समाप्त करने की साजिश चल रही है। ऐसे बयानों को अगर बेसिर-पैर की बातों से सामाजिक उत्तेजना पैदा करने की कोशिश कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

अभी तक किसी नेता या राजनीतिक दल ने आरक्षण के औचित्य पर प्रश्न नहीं उठाया है। आरक्षण की अवधारणा एवं इसका क्रियान्वयन भारतीय समाज की सोच में रच-बस गया है। किसी राजनीतिक दल या संगठन की बात तो छोड़ ही दें, आज शायद ही कोई सजग एवं चिंतनशील व्यक्ति होगा जो आरक्षण के प्रावधान को समाप्त करने की सोच भी सकता है। ऐतिहासिक एवं सामाजिक कारणों से सदियों से दलित एवं शोषित वर्गों के लिए संविधान निर्माताओं ने डॉ. आंबेडकर के नेतृत्व में आरक्षण के प्रावधानों को मूर्त रूप दिया। आंबेडकर के साथ सभी सदस्य आरक्षण को लेकर एकमत थे और किसी ने कोई प्रतिरोध नहीं किया। इस मामले में सबसे व्यावहारिक सोच तो आंबेडकर की ही थी जब उन्होंने कहा था कि आरक्षित स्थानों की संख्या किसी भी सूरत में अनारक्षित स्थानों से अधिक नहीं होनी चाहिए एवं आरक्षण के सिद्धांतों का क्रियान्वयन इस प्रकार होना चाहिए कि किसी भी संस्था या व्यवस्था की गुणवत्ता प्रभावित न हो।

सभी दल आज अच्छी तरह समझते हैं कि आरक्षण की व्यवस्था न उनकी सोच से लागू हुई है और न ही उसे समाप्त करने में कोई सक्षम है, फिर भी हर कोई आरक्षण समाप्ति के छद्म मुद्दे पर किसी भी तरह की कुर्बानी देने की बात कर रहा है। किसी भी दशा में आरक्षण समाप्त नहीं होने देने की घोषणा करना भी समझ से परे है। हर राजनीतिक दल आरक्षण एवं अनुसूचित जाति/जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम के पक्ष में खड़े होने में एक-दूसरे से आगे निकल जाना चाहता है। यह उन वर्गों की आंखों में अपनी कृत्रिम बहादुरी प्रदर्शित करना है। आखिर बिना किसी खतरे के ही अपनी आहुति देने का दंभ भरने का क्या मतलब? क्या इन सब चीजों के माध्यम से हम उन वर्गों के लोगों के दिलों में अकारण असुरक्षा की भावना पैदा नहीं कर रहे हैं? क्या राजनीतिक दल अपनी संवेदनहीनता से सामाजिक रूप से इस विस्फोटक मुद्दे से खिलवाड़ नहीं कर रहे हैं? इस तरह समाज को विभाजित एवं खंडित कर विस्फोटक स्थिति बनाने की कोशिश का क्या औचित्य है?

भारतीय समाज में शांति और सद्भाव के साथ दलित एवं पिछड़े वर्गों को न्याय दिलाना ही सभी दलों की घोषित नीति है और इसी दिशा में सभी दलों को काम भी करना चाहिए। किसी क्षणिक राजनीतिक लाभ के लिए समाज को भ्रांति एवं भ्रम के दलदल में धकेलना किसी भी सूरत में वांछनीय नहीं है। सभी दलों को मिलकर सच्चाई एवं यथार्थ की राजनीति करनी चाहिए ताकि समावेशी विकास का मार्ग प्रशस्त हो। समाज बचेगा तभी राजनीति होगी और अगर समाज बिखरेगा तो राजनीति और राजनीति करने वाले भी बच नहीं पाएंगे।

(लेखक बिहार विधानसभा के अध्यक्ष हैं)

response@jagran.com

किसी के एजेंडे में नहीं समाज निर्माण

लक्ष्मीकांता चावला

दुष्कर्म जैसे अपराध पर लगाम लगाने का काम केवल कानून को कठोर बनाने से नहीं होने वाला

चंद दिनों पहले तक जम्मू के कठुआ जिले का जो रसाना गांव अपरिचित-अनजाना था वह आज देश भर में चर्चा में है। अफसोस यह है कि यह चर्चा किसी नेक काम के लिए नहीं, उस भयावह घटना के कारण हो रही है जो सभ्य समाज को शर्मिंदा करने वाली है। 10 जनवरी को इस गांव की आठ साल की एक मासूम बालिका गुम हो गई। सात दिन बाद उसकी लाश मिली। आठ साल की बालिका ने कई दिनों तक वह यातना सही जिसे सुनकर किसी का भी कलेजा छलनी हो जाए। बालिका का शव बरामद होने के बाद जम्मू-कश्मीर की क्राइम ब्रांच की ओर से जो आरोप पत्र अदालत में पेश किया गया उसमें यह बात सामने आई कि उसे कई दिन बंदी बनाकर रखा गया और उससे कई लोगों ने दुष्कर्म किया। इस घटना पर केंद्रीय मंत्री वीके सिंह की टिप्पणी बहुत मार्मिक है। उन्होंने कहा, 'मनुष्य और जानवर में फर्क होना चाहिए और है भी, लेकिन कठुआ में आठ साल की मासूम के साथ जो हुआ उससे लगता है कि इंसान होना गाली है। इससे तो जानवर कहीं अच्छे हैं। जो लोग अपराधियों को धर्म की आड़ में शरण देना चाहते हैं उन्हें पता होना चाहिए कि वे भी अपराधी ही माने जाएंगे। यह याद रखना चाहिए कि बेटी बेटी है, अपराध अपराध है। उसका किसी भी धर्म संप्रदाय से संबंध नहीं।'

कठुआ की भयावह घटना के सामने आने के दौरान ही उन्नाव की एक किशोरी से दुष्कर्म का आरोप भाजपा के विधायक कुलदीप सिंह सेंगर पर लगा। शिकायत दर्ज होने के आठ माह बाद सजा पीड़ित किशोरी के पिता को मिली। विधायक के भाई ने उन्हें बुरी तरह पीटा और फिर भी पुलिस ने उन्हें ही जेल में डाल दिया, जहां उनकी मौत हो गई। उनकी मौत के बाद पीड़िता के परिवार की चीख-पुकार मीडिया के सहयोग से सरकार के कानों तक पहुंची और आखिरकार सरकार के साथ न्यायपालिका भी सक्रिय हुई। इस सक्रियता के बीच मामले की जांच सीबीआइ को सौंपी गई, जिसने विधायक को गिरफ्तार कर लिया। दुर्भाग्य से कठुआ और उन्नाव के मामले अपवाद नहीं।

अपने देश में प्रतिदिन बच्चियां, किशोरियां और महिलाएं दुष्कर्म का शिकार हो रही हैं। चंद दिन पहले झारखंड में महिला और उसकी बेटी से दुष्कर्म हुआ। गुजरात के सूरत में 11 साल की लड़की दरिंदों का शिकार होकर मौत के मुंह में चली गई। हरियाणा के रोहतक में गंदे नाले से एक बैग मिला, जिसमें आठ- दस वर्षीय बालिका की लाश मिली। संदेह है कि उससे दुष्कर्म किया गया। आखिर हमारा समाज इतना कैसे गिर सकता है कि तीन-चार साल की छोटी बच्चियों से लेकर वृद्धा तक को वासना का शिकार बनाया जा रहा है? कठुआ और उन्नाव की घटनाओं और

उन पर आम लोगों के रोष के बाद केंद्रीय गृहमंत्री से लेकर प्रधानमंत्री तक ने भरोसा दिलाया कि कोई भी अपराधी हो, बचेगा नहीं। जम्मू-कश्मीर की मुख्यमंत्री महबूबा मुफ्ती ने भी कठुआ कांड के मामले में जल्द न्याय दिलाने के लिए फास्ट ट्रैक कोर्ट के गठन के लिए राज्य के हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश को एक पत्र लिखा है। मुख्यमंत्री चाहती हैं कि इस मामले की नियमित सुनवाई हो और दोषियों को जल्द दंड दिया जाए। दरअसल ऐसा दुष्कर्म के सभी मामलों में होना चाहिए।

महिला एवं बाल विकास मंत्री मेनका गांधी ने कहा है कि 12 वर्ष से कम आयु की बच्चियों से दुष्कर्म के अपराधियों को मौत की सजा दी जा सके, इसके लिए संबंधित कानून में संशोधन किया जाएगा। अगर यह काम हो भी जाए तो भी जब तक पुलिस और जांच एजेंसियों का काम-काज नहीं सुधरता तब तक कुछ ठोस शायद ही हासिल हो। आखिर हम यह कैसे भूल सकते हैं कि हरियाणा में एक स्कूल के छात्र की हत्या में पुलिस ने किस तरह स्कूली बस के एक कर्मचारी को हत्यारा बता दिया था और यह दावा किया था कि उसे पर्याप्त प्रमाण भी मिल गए हैं।

गनीमत रही कि मामले की जांच सीबीआइ ने की और उस गरीब की जान बची। कुछ इसी तरह का एक मामला पंजाब में देखने को मिला। फिल्लौर में एक संदिग्ध अपराधी से नशे का धंधा कबूल करवाने के लिए उसके मुंह में तेजाब डाल दिया गया। दरअसल यक्ष प्रश्न यही है कि क्या हम निष्पक्ष जांच की व्यवस्था कर पाएंगे? कहीं बेकसूर और कमजोर लोगों के गले में ही तो फांसी का फंदा नहीं डाल दिया जाएगा? क्या कोई सरकार, समाज सुधारक, विचारक इस बारे में सोचेगा कि समाज में अंधवासना की प्रवृत्ति क्यों बढ़ती जा रही है? जिस देश में साबुन की एक टिकिया बेचने के लिए भी अर्द्धनग्न लड़कियों का प्रदर्शन किया जाए और अन्य विलासी चीजों को बेचने के लिए कामुकता की आग में घी डालने वाले विज्ञापन प्रचारित-प्रसारित किए जाएं तथा मादक पदार्थों की खुलेआम बिक्री पर रोक लगाने के उपाय न किए जाएं वहां क्या महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराधों पर लगाम लग सकती है? क्या ऐसे देश में महिलाओं को आदर से देखा जा सकता है? यह भी ध्यान रहे कि नैतिक शिक्षा को हाशिये पर ठेला जा रहा है और यहां तक कि स्कूली पाठ्यक्रमों से महापुरुषों के जीवन चरित्र गायब हो रहे हैं।

आखिर हम समाज को चरित्रवान और नैतिक बनाने के लिए कुछ क्यों नहीं करना चाहते? आज की जरूरत नेताओं के पंजे से पुलिस को मुक्त करके स्वतंत्र कार्य का अवसर देना तो है ही, भावी पीढ़ी को नैतिक शिक्षा से लैस करने की भी है। अच्छा हो कि हमारे शिक्षाशास्त्री, हमारे धर्म गुरु, हमारे समाज सुधारक अपने घरों-दफ्तरों से बाहर निकलें और समाज को सुधारने का काम अपने हाथ में लें। और भी अच्छा तो यह होगा कि हमारे धर्मगुरु कुछ समय के लिए मोक्ष-मुक्ति का रास्ता बताने के स्थान पर लोगों को यह बताएं कि समाज सदाचारी कैसे बने? वे लोगों को समझाएं कि स्वस्थ समाज कैसे बनता है? हमें यह भी समझना होगा कि दुष्कर्म जैसे अपराधों पर लगाम लगाने का काम केवल कानूनों को कठोर बनाते जाने से नहीं होने वाला। आखिर यह एक तथ्य है कि निर्भया प्रकरण के बाद महिला अपराध संबंधी कई कानून कठोर किए गए, लेकिन क्या यह कहा जा सकता है कि उसके बाद से महिलाओं के खिलाफ अपराधों पर लगाम लगी है?

(लेखिका पंजाब सरकार की पूर्व मंत्री हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

संघर्ष

संघर्ष और जीवन एक दूसरे के पर्याय हैं। संघर्ष इस खूबसूरत जीवन का अभिन्न हिस्सा है। हम लोगों की सत्ता को तो देखते हैं, मगर उस सफलता को प्राप्त करने के लिए उन्होंने जो संघर्ष किया है, उसे जाने-अनजाने अनदेखा कर देते हैं। व्यक्ति जितना बड़ा बनता है, उसका संघर्ष भी उसके जीवन में उतना ही ज्यादा होता है। भगवान श्रीराम राजा के पुत्र थे, लेकिन उन्होंने चौदह साल वनवास में संघर्षपूर्ण जीवन व्यतीत किया और आज हम उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के नाम से जानते हैं व उन्हें पूजते भी हैं। यह उनके जीवन का संघर्ष ही था जिसने उन्हें उत्तम पुरुष बना दिया। गौतम बुद्ध भी राजा के लड़के थे। वह संघर्षरहित जीवन जी सकते थे, किंतु जीवन के वास्तविक व अंतिम सत्य को जानने के लिए उन्हें कड़ा संघर्ष करना पड़ा और अंततः उन्होंने उस सात्विक सत्य को दुनिया के समक्ष रखा और भगवान का दर्जा प्राप्त किया। भगत सिंह ने देश को आजाद कराने का प्रण बचपन में ही कर लिया था और उन्होंने मरते दम तक संघर्ष को अपनाया।

दरअसल हर इंसान के जीवन में संघर्ष होता है। केवल उसके रूप अलग-अलग होते हैं। हमें संघर्ष से घबराना नहीं चाहिए। यह वह गहना है जो व्यक्ति को आंतरिक रूप से सुंदर और बलिष्ठ बनाता है। यह हममें त्याग और दूसरों के प्रति समर्पण की भावना पैदा करता है। संघर्ष जीवन की वह किताब है जिसके पन्ने कभी खत्म नहीं होते। यह वह शक्ति है जो आजीवन हमारी चेतना को जागृत करने का काम करती है। जीवन के मूल्यों से अवगत कराता है। जीवन में हर पल संघर्ष है। फर्क इतना है कि जो लोग मानसिक प्रबलता और दृढ़ता के साथ इसका सामना करते हैं, वे जन संघर्ष पर विजय प्राप्त कर लेते हैं।

जो व्यक्ति संघर्ष करने से घबराता है, उससे दूर भागने की कोशिश करता है, संघर्ष उसके लिए एक बोझ की तरह प्रतीत होता है, जिसके कारण वह आंतरिक रूप से कमजोर होता जाता है और जीवन के पगपग पर असफलताओं से घिरता चला जाता है। ऐसा बिल्कुल नहीं है कि सफलता प्राप्त करने के बाद संघर्ष खत्म हो जाता है। केवल उसका स्वरूप बदल जाता है और उसका सामना करने की ज्यादा हिम्मत हममें आ जाती है। दुनिया में जो भी महान व्यक्ति हुए हैं, वे संघर्ष को बोझ नहीं समझते।

सौरभ पाठक

पाठकनामा

pathaknama@nda .jagran.com

सीबीआइ जांच से परहेज क्यों

जम्मू से अलग दिल्ली के बोल शीर्षक से लिखे अपने लेख में बलबीर पुंज का कठुआ दुष्कर्म कांड की भर्त्सना करते हुए इसकी ओट में होने वाली हिंदू-मुस्लिम सांप्रदायिक राजनीति को निंदनीय बताना महज राजनीतिक आदर्श की बात है, क्योंकि इस देश में स्वतंत्रता के साथ ही भारत-विभाजन के रूप में हिंदू-मुस्लिम सांप्रदायिकता का जो बीजारोपण किया गया था, वह आज विष-वृक्ष बन चुका है। ऐसे में कठुआ कांड, जिसमें पीड़ित बच्ची का धर्म मुस्लिम और अपराधी को हिंदू धर्म से जुड़ा बताया जा रहा हो, में इस व्यावहारिकता की बात करना बेमानी सा है कि इस केस को हिंदू-मुस्लिम के चश्मे से न देखा जाय। वस्तुतः स्वतंत्रता के बाद इस देश की हिंदू-मुस्लिम आबादी को अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक के रूप बांटकर जो सांप्रदायिक राजनीति की गई उससे पूरा देश प्रभावित हुआ। इस देश में हिंदुत्व के समर्थक राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के उदय का कारण भी देश की यही सांप्रदायिक राजनीति बनी। बावजूद इसके इस देश में राष्ट्रीय एकता का जो घनीभूत भाव बना रहा, वह इस देश की शांतिप्रिय हिंदू-मुस्लिम जनता के आपसी सौहार्द एवं भाई-चारे का सुपरिणाम है जिसे कुछ अलगाववादी तत्व हमेशा सांप्रदायिक दंगों और आतंकवाद की आग में झुलसाने की कोशिश करते रहे। इस परिप्रेक्ष्य में यदि देश का जन-मानस सांप्रदायिक भेद-भाव से परे होकर कठुआ कांड की सीबीआइ जांच की मांग कर रहा है तो इसमें हिंदू-मुस्लिम की सांप्रदायिक राजनीति आड़े क्यों आ रही है? एक जघन्यतम अपराध की निष्पक्ष जांच से परहेज क्यों किया जा रहा है?

pandeyvp1960@gmail.com

संसद में उठाएं आवाज?

व्यवस्थापिका का प्रमुख कार्य कानून बनाना कार्यपालिका पर प्रश्नोत्तर काल में प्रश्न पूछना और नियंत्रण रखना है, लेकिन 5 अप्रैल से शुरू सत्र में ऐसा लग रहा है जैसे सांसद सिर्फ हाजिरी लगाने, सदन ठप्प कर भवन के बाहर सरकार के विरुद्ध प्रदर्शन करने के लिए आते हैं। आए दिन बच्चियों के साथ दरिंदगी की घटनाएं सामने आ रही हैं। विपक्षी दल के नेता कैंडल मार्च कर विरोध प्रदर्शन कर रहे हैं, जिनमें सदन में शोर मचाने वाले सांसद सबसे आगे रहते हैं। हैरानी इस बात की है कि तीन राज्यों में बच्चियों से दुष्कर्म और हत्या पर सरकारों ने फांसी की सजा का कानून बनाया है, तो क्या देश के नेता धरना, प्रदर्शन का ढोंग छोड़कर संसद के दोनों सदनों और विधान मंडल के सत्रों में इस जघन्य अपराध के लिए पूरे देश में फांसी का कानून नहीं पारित करवा सकते? इस विषय पर हर पार्टी को अपने विचार रखने के साथ ही फास्ट ट्रैक कोर्ट का निर्माण करवाने और ऐसे मामलों में कठोरतम दंड या फांसी के लिए कानून बनाने के लिए एकजुट होना चाहिए। वोटिंग में सभी सांसद भाग लें ध्वनि मत से बिल पास करें।

shobhabhardwaja09@gmail.com

अपराध का धर्म नहीं

देश में जिस तेजी से अपराध को धर्म के साथ जोड़कर देखे जाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है, इससे जनता में वैमनस्यता का संचार होगा, लोगों के बीच की दूरियां बढ़ेंगी। ऐसी सोच संकुचित मानसिकता का प्रतीक है। अपराधी कभी भी किसी धर्म से ताल्लुक नहीं रखता, उसका सिर्फ एक ही धर्म होता है और जो अपराध होता है। कठुआ मामले पर जो राजनीति हो रही उसका केंद्र सिर्फ हिन्दू और मुस्लिम बन कर रह गया है। लोग जिस तरह से न्याय की मांग कर रहे हैं, वह काबिल-ए-तारीफ है, लेकिन दुष्कर्म के सभी मामलों पर लोगों को ऐसे ही आक्रोशित होने की आवश्यकता है। आज के नेताओं का सिर्फ एक उद्देश्य है कि किसी प्रकार से राजनीति को चमकाया जाएं।

pathaknirajkumar2013@gmail.com

न्याय पर सवाल

मक्का मस्जिद विस्फोट मामले में राष्ट्रीय एजेंसी यानी एनआइए की अदालत ने सभी पांच आरोपितों को बरी कर दिया, इस फैसले पर सवाल उठना स्वाभाविक है कि आखिर इस मस्जिद पर विस्फोट किया किसने? इस मामले की अनदेखी नहीं की जा सकती, क्योंकि प्रारंभ में स्थानीय पुलिस ने हरकतुल जिहाद-ए-इस्लामी नामक आतंकी संगठन को जिम्मेदार माना और कुछ की गिरफ्तारी भी हुई। उसी दौरान तत्कालीन सरकार की ओर से भगवा और हिन्दू आतंकवाद का जुमला उछाला गया। इस जुमले को राजनीतिक फायदे के लिए इस्तेमाल किया गया, लेकिन तथ्य यह है कि आतंकवाद के मामलो में आरोपितों को सजा दिलाने में जांच एजेंसियां पहले भी नाकाम हो चुकी है। अदालती फैसले को लेकर राजनीतिक दल अपनी अपनी प्रतिक्रिया देने लगते हैं और सवाल उठाने लगते हैं जो कि ठीक नहीं। सवाल यह है कि हमले में आरोपी को कब पकड़ा जाएगा? कब दोषी को सजा मिलेगी? कब बेगुनाहों को न्याय मिलेगा? अब यह तो आने वाला वक्त ही बताएगा।

amitji5000@gmail.com

जल्द बने ठोस कानून

जम्मू कश्मीर के कठुआ में हुए 8 वर्षीय बच्ची के साथ दुष्कर्म और उसकी हत्या का मामला संयुक्त राष्ट्र में भी प्रासंगिक हो चुका है। संयुक्त राष्ट्र के महासचिव एतोनियो गुटेरेस ने इस मामले को भयावह करार दिया है, उन्होंने अपराधियों को कानून के दायरे में लाने की उम्मीद जाहिर की है। इस घटना से पूरे विश्व में भारत की छवि को काफी नुकसान पहुंचा है। देश में आए दिन किसी ना किसी बच्ची के साथ दुष्कर्म की घटना सामने आ रही है। केंद्र सरकार को कानून में बदलाव करके इसे और ठोस बनाना होगा।

akpappu75@gmail.com

ट्वीट-ट्वीट

नोटबंदी के साल भर बाद एक और नकदी संकट ने दस्तक दी है। देश भर के एटीएम नकदी किल्लत से जूझ रहे हैं।
ज्योतिरादित्य सिंधिया@JM_Scindia

आरबीआइ द्वारा असमान वितरण से नकदी का अस्थाई संकट पैदा जरूर हुआ है, लेकिन सरकार ने तीन दिनों में इसे सुलझाने की बात कही है। फिर इतनी अफरातफरी क्यों हो रही है। क्या हर मुद्दे पर राजनीति करना जरूरी है।
गीतिका@ggiittiikkaa

कट्टरपंथी और अंधराष्ट्रवादियों की समस्या यही है कि वे गणित, दर्शन, साहित्य और विज्ञान में हाथ आजमाने के बजाय यही दर्शाने में लगे रहते हैं कि पांच हजार साल पहले उनके पुरखों ने इनमें क्या उपलब्धियां हासिल की थी।
कौशिक बसु@kaushikcbasu

नरेंद्र मोदी तीस साल बाद स्वीडन जाने वाले पहले प्रधानमंत्री हैं। यानी राजीव गांधी के दौर में हुए बोफोर्स घोटाले के बाद यह भारत का पहला उच्चस्तरीय स्वीडन दौरा है।
किरण कुमार एस@KiranKS

हरियाणा भले ही भारत का बहुत छोटा राज्य हो, लेकिन राष्ट्रमंडल खेलों में देश को मिले एक तिहाई पदक इसी सूबे के खिलाड़ियों ने जीते हैं।
सदानंद धूमे@dhume

जनपथ

सोना-चांदी-कांस्य के पदकों का अंबार,
अबकी कॉमनवेल्थ में आई गजब बहार।
आई गजब बहार खेल दिखलाया चंगा,
लहराया चहुंओर ठाट के साथ तिरंगा।
रहता था हर बार जहां पदकों का रोना,
खिलाड़ियों ने खूब बंधु बरसाया सोना।
– ओमप्रकाश तिवारी

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा जागरण प्रकाशन लि. के लिए डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित एवं 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित, संपादक (दिल्ली एनसीआर) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 23359961-62, नोएडा कार्यालय : 0120-3915800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No 50755/90 *इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई शुल्क अतिरिक्त। वर्ष 28 अंक 273